पढ़ने–लिखने की संस्कृति की ओर...

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन और कुमायूं यूनिवर्सिटी ने उत्तराखण्ड के तमाम रचनात्मक शिक्षक साथियों को एक साथ जोड़ने, उन्हें एक–दूसरे के अनुभवों से रु–ब–रु करा सकने की मंशा से 'रचनात्मक शिक्षक संगम' की परिकल्पना को अंजाम दिया। इस रचनात्मक संगम का पहला प्रयास था 'पढ़ने–लिखने की संस्कृति की ओर' नाम से चार दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन कुमायूं यूनिवर्सिटी नैनीताल के परिसर में हुआ।

पढ़ना–लिखना हमारी संस्कृति का, हमारी जीवनचर्या का हिस्सा कैसे बने? आखिर पढना–लिखना इतना जरूरी क्यों है? आसपास जो लोग हैं ज्यादातर पढ़े–लिखे ही तो हैं, फिर किस पढने–लिखने की बात होने वाली है? क्या होता है सार्थक पढ़ना और उस सार्थक पढ़ने के बाद होगा क्या? ऐसे ही तमाम सवालों से दो–चार होने के लिए उत्तराखण्ड के तमाम रचनात्मक (साहित्यिक) गतिविधियों से गहरे जुड़े हुए, साहित्य में ठीक ठाक दखल रखने वाले और स्कूलों में बगैर किसी पीठ पर पड़ने वाली थपथपाहट की उम्मीद के कुछ न कुछ नया और बेहतर करने वाले शिक्षक कुमायूं विश्वविद्यालय के कैम्पस में चार दिन को मिल बैठे।

इस संगोष्ठी में समूचे उत्तराखण्ड के अलग–अलग जिलों के दूर–दराज के स्कूलों और कॉलेजों व विश्व विद्यालय से आये शिक्षकों ने प्रतिभाग किया। प्राथमिक, माध्यमिक या उच्च शिक्षा की दीवारों को भी इस संगोष्ठी के लिए गिरा दिया गया था। इस संगोष्ठी का उद्देश्य उत्तराखण्ड के शिक्षकों के बीच पढ़ने–लिखने की संस्कृति को बढ़ावा देना और दूर–दराज में एकल प्रयासों के चलते जो (बिना किसी लाभ या प्रशंसा के इरादे से) कुछ बेहतर प्रक्रियाएं शिक्षक कर पा रहे हैं, उनके हौसलों को सलाम करना और उनके जरिये ऊर्जा और रचनात्मकता को समूचे उत्तराखण्ड के शिक्षक साथियो के बीच प्रसारित करना।

संगोष्ठी में आये सभी प्रतिभागियों को अपने बारे में, अपने काम के बारे में और अपनी उपलब्धियों के बारे में बताना था। लेकिन इस प्रस्ताव के साथ ही तमाम शिक्षक साथी अपने भीतर संकोच से सिकुड़ते नजर आये। इस संकोच

को महेश पुनेठा ने भांप लिया और इसे अलग अंदाज देते हुए कहा कि उपलब्धियों के बारे में बात करते हुए हम अक्सर संकोच में डूब जाते हैं, ऐसे में अगर कोई साथी अपनी उपलब्धियों को बताने में चूक जाते हैं या नहीं बताते तो वो दूसरे साथी जो उनके बारे में जानते हैं वो उस परिचय को पूरा कर सकते हैं। इसी तरह परिचय का सिलसिला पूरा हुआ।

पुस्तकें हमें सोचना सिखाती हैं, प्रतिरोध करना सिखाती हैं

इस परिचय श्रृंखला में शिक्षक साथियों की प्रकाशित पुस्तकों के बारे में पता चला, किसी की एक किसी की पांच–छह किताबें तक प्रकाशित हो चुकी थीं वह भी ज्ञानपीठ, राजकमल जैसे प्रकाशनों से। कुछ शिक्षक ज्ञानपीठ पुरस्कार, शैलेश मटियानी पुरुस्कार, सूत्र सम्मान आदि से सम्मानित हो चुके हैं। इन शिक्षक साथियों में 'शैक्षिक दखल' नामक पत्रिका (उत्तराखण्ड के शिक्षकों की पहल) के सम्पादक मंडल के लोग ही शामिल रहे।

रेखा चमोली ने कहा कि 'बच्चों को इस दुनिया में जीने का सलीका आये इस योग्य बनाने का काम भी स्कूलों का है'। शिक्षकों ने कहा कि बच्चों में पढने की इच्छा है, सीखने की इच्छा है लेकिन हमारे तरीके उन्हें सीखने की इच्छा से दूर कर रहे हैं। बागेश्वर से आये केवलानन्द कांडपाल ने कहा कि उन्हें सरकारी शिक्षा पर भरोसा है वही समाज के लिए मुफीद है। द्वाराहाट से आई अनीता प्रकाश ने अपनी छात्राओं के साथ काम करने के अनुभवों को साझा करते हुए पढ़ने की संस्कृति पर काम करने की बात की। पौड़ी से आई अनीता ध्यानी ने कहा कि उन्हें पढ़ने का शौक है और उसके लिए समय निकालने का प्रयास करती रहती हैं। नौगांव से आये ध्यान सिंह रावत ने कहा कि बच्चों से मिला प्यार और सम्मान किसी भी अन्य सम्मान से कहीं बड़ा है। टिहरी से आये मोहन चौहान ने कहा कि मैं शिक्षकों के लिए इसी तरह के किसी रचनात्मक मंच की कल्पना किया करता था। स्वाति मेलकानी ने कहा कि बच्चे भी हमें सिखाते हैं।

पौड़ी से आये कमलेश जोशी ने कहा कि, 'मैं मूलतः विज्ञान का शिक्षक हूं विज्ञान प्रकृति में घुला–मिला है लेकिन हमारे तरीके, हमारी किताबें उस बच्चे को प्रकृति के ज्ञान से जोड़ पाने में सफल नहीं है। बच्चे के पास अपना बहुत सा ज्ञान है। हमें उन्हें पढ़ाने के तरीके बदलने होंगे।' हल्द्वानी से आये महेश बवाड़ी ने कहा कि, 'पुस्तकें हमें सोचना सिखाती हैं, प्रतिरोध करना सिखाती हैं' भूपेन ने कहा कि, 'बच्चों को सम्मानित करने का दायित्व भी हमारा है। पारम्परिक तरीकों पर सवाल किये जाने की जरूरत है। बच्चों को आलोचना करने का अधिकार देना होगा और उन्हें सफल इंसान बनने की ओर प्रेरित करना होगा।' बाजपुर से आये सुरेश भट्ट ने कहा कि 'जब हम कुछ नया करते हैं तो बहुत से लोगों को, संस्था के ही अधिकारियों को खटकने भी लगते हैं।' नैनीताल से आये विनोद जीना ने कहा कि, 'शिक्षकों को स्कूल आना और जाना से आगे सोचना होगा। यह सवाल हम सबके लिए भी है कि हमारे स्कूल ऐसे क्यों नहीं हैं कि हम अपने बच्चे अपने स्कूल में नहीं पढ़ायें। कल्जीखाल पौड़ी से आये मनोधर नैनवाल ने कहा, 'मेरी असफलताएं मुझे जिद्दी बनाती हैं। उन्होंने 2008 में नवाचारों के लिए सृजन समूह बनाया है जहां शिक्षक साथी मिल बैठते हैं और आपस में शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण पर बातचीत करते हैं। रुद्रपुर से आयी अपर्णा ने कहा कि बच्चों के पास पढ़ने के न तो भरपूर अवसर हैं न रुचिकर किताबें और न ही अध्यापकों में उन्हें पढ़ाने को लेकर कोई उत्साह है जो कि चिंता की बात है। चकराता से आये निरंजन सुयाल ने बताया कि किस तरह वो स्थानीयता से जोड़कर कर जब बच्चों को पढ़ाते हैं तो बच्चों से उनका एक रिश्ता बनने लगता है. अगस्त्यमुनि से आये गजेन्द्र रौतेला ने कहा कि शिक्षक की भूमिका केवल विद्यालय में नहीं है। स्कूल के बाहर भी हमें काम करना होगा और समुदाय से संवाद कायम करना होगा। रानीबाग से आये दिनेश कर्नाटक ने कहा, 'बेहतर काम करने वाले शिक्षकों की कमी नहीं है। उन्हें जोड़ने के इरादे से उनके काम को सराहने के उद्देश्य से 'शैक्षिक दखल' पत्रिका निकालनी शुरू की. आज 1300 शिक्षक इस पत्रिका से जुड़ चुके हैं जो कि आशान्वित करने वाली बात लगती है।' उन्होंने समान शिक्षा लागू करने की बात करते हुए कहा कि शिक्षक का काम केवल पढ़ाना नहीं होता उसका काम है कि वो शिक्षा से जुड़े और भी तमाम कामों में हस्तक्षेप करे, उन्हें समझे, जाने और विमर्श का हिस्सा बने।'

पिथौरागढ़ से आये निर्मल ने आवासीय विद्यालयों के अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि बच्चों को उनके परिवेश से जुड़े छोटे–मोटे काम देने चाहिए इससे उनकी समझ का विस्तार होता है. उत्तरकाशी से आये सुंदर नौटियाल ने वैचारिक शून्यता को तोड़ने, निजी से सामूहिकता की ओर बढ़ने और जनपक्षधरता की बात कही. पिथौरागढ़ से आये चिंतामणि जोशी ने कहा कि हमें अपने छात्रों में पढ़ने का चस्का लगाना होगा. उन्होंने एक भावुक किस्सा सुनाया कि किस तरह उन्होंने अपने प्रिय खरगोश के बदले एक बार किताबें ली थीं। पिथौरागढ़ से ही आये गिरीश चन्द्र पाण्डेय प्रतीक ने कहा कि बच्चों से

बहुत सीखने को मिलता है। दुर्गम स्कूल में काम करते हुए बच्चों को और उनके लोक को समझ सका हूं। अगस्त्यमुनि से आये मनोज ने कहा कि मैं हूं तो गणित का शिक्षक लेकिन मैं सिर्फ गणित नहीं पढ़ाता, गणित के किस्से भी सुनाता हूँ। सिर्फ विज्ञान नहीं पढ़ाता, विज्ञान की कहानियां भी बच्चों को सुनाता हूं।' मनोज ने कहा कि हमें बच्चों को उनके अपने सपने देखना सिखाना होगा।

बदलने लगते हैं पढ़ने-लिखने के अर्थ

'पढ़ने–लिखने की संस्कृति की ओर...' संगोष्ठी का दूसरा दिन प्रसिद्ध विज्ञान लेखक देवेन्द्र मेवाड़ी और जाने–माने इतिहासविद शेखर पाठक के हवाले रहा. देवेन्द्र मेवाड़ी जी का वक्तव्य जादू के पिटारे में से निकली कहानी जैसा था, जिसके हर वाकये के बाद आगे क्या हुआ जानने की उत्सुकता बनती जा रही थी। मेवाड़ी जी ने पढ़ने–लिखने के आड़े आने वाली दीवारों की ओर इशारा करते हुए अपने अनुभव बताये कि किस तरह जब हम जीवन से, आसपास के परिवेश से, मौसम से, पंछियों से रंगों से, रागों से जुड़ते हुए चलते हैं तब पढ़ने–लिखने के अर्थ ही बदल जाते हैं। उन्होंने कहा कि विज्ञान हो या गणित या कोई भी अन्य विषय उन्हें अलग–अलग खांचों में देखना बंद किये जाने की जरूरत है। साहित्य और कलाओं के पास वो जादू है जो सारे विषयों को अपने में समेटकर उन्हें रोचक बना सकता है.

शिक्षा का उद्देश्य रूढ़ियों से मुक्त करना

देवेन्द्र मेवाड़ी जी के रोचक और विज्ञान व साहित्य के रिश्तों को गुनते, बुनते एक खूबसूरत सत्र के बाद शिक्षक साथियों को इंतजार था दिन के दूसरे सत्र का। दूसरा सत्र प्रसिद्ध इतिहासविद शेखर पाठक जी का था। शेखर जी ने अपनी बात की शुरुआत सकारात्मक बेचैनी के साथ की जिसके चलते उत्तराखण्ड के तमाम शिक्षक साथी इकठ्ठे हुए हैं। इस तरह के आयोजनों की सार्थकता पर बात करते हुए उन्होंने कहा कि यह सिलसिला रुकना नहीं चाहिए। उन्होंने स्कूल संस्कृति पर बात करते हुए कहा अपने स्कूली दिनों को याद करते हुए उन शिक्षकों का जिक्र किया जिन्होंने शेखर जी के सोचने के ढंग में बदलाव किया। उन्होंने कुछ मुख्य बातें कहीं जो इस प्रकार रहीं–

- शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या है यह सोचना जरूरी है।
- अगर शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रूढ़ियों आडम्बरों से मुक्त करना है, तार्किक करना है तो क्या वो यह काम कर पा रही है?
- अगर शिक्षा अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रही है तो यह जानना जरूरी है कि आखिर दिक्कत कहां है।
- बच्चों को तार्किक बनाना होगा, उनमें सोचने की आदत का विकास करना होगा।
- पढ़ने–लिखने की आदत हमें तार्किक बनाती है, इसलिए किताबों की दुनिया को बच्चों के आगे खोला जाना जरूरी है।
- बच्चे अपने विषयों में स्पष्ट हों, इसके लिये शिक्षकों में स्पष्टता का होना जरूरी है।
- हमारे विषय या विषयों को पढ़ाने के तरीकों में स्थानीयता का कितना जुड़ाव है।
- अगर उत्तराखण्ड के शिक्षक उत्तराखण्ड की भाषाओं से, संस्कृतियों से जुड़े हुए हैं तो उनके विषयों में वो अपने आप जुड़ ही जायेगा।
- हमारी प्रकृति, पहाड़, वनस्पति के नुकसान को लेकर क्या हम अपने बच्चों में बेचौनी पैदा कर पा रहे हैं?
- क्या छात्रों को हम अपनी संस्कृति अपने पर्यावरण, भाषाओं, संस्कृति के प्रति संवेदनशील बना पा रहे हैं?
- पलायन के कारणों पर क्या हम सचमुच ठीक से विचार कर पा रहे हैं?
- अपने जीवन की बेहतरी के लिए लोगों के पास कोई विकल्प नहीं होता इसलिए भी वो गांव छोड़ते हैं।
- पलायन पर आंसू बहाने के बजाय क्या हमने पलायन रोकने के उपायों के बारे में कुछ किया है?
- हमें पहाड़ को समझना होगा, यहां की समस्याओं को समझना होगा और उसके समाधान पर विस्तार से संवेदनशीलता के साथ बात करनी होगी।

कक्षाओं में बिखेरा जाना जरूरी है साहित्य का आनंद

एक तरफ पहाड़ों का मौसम खूबसूरत रंग बिखेर रहा था, दूसरी तरफ पढ़ने–लिखने का माहौल लगातार सघन होता जा रहा था। कविता जैसे मौसम में पढने–पढ़ाने की बात होने का सुख प्रतिभागी शिक्षकों के चेहरों पर दर्ज था। तीसरे दिन दो सत्र होने थे। पहला सत्र था अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के मनोज कुमार जी का। साहित्य को कक्षाओं में किस तरह बरता जाय, किस तरह समझा जाय इस बारे में बात करनी थी और शाम के दूसरे सत्र में गुरबचन सिंह जी को बाल साहित्य पर अपनी बात रखनी

थी। मनोज कुमार जी ने कहा कि साहित्य के अध्यापक की अलग से कोई पहचान नहीं होती है लेकिन अगर उसमें आलोचनात्मक दृष्टि है तो वो अपनी अलग सी पहचान बना जरूर लेता है। उन्होंने कहा–

- स्कूली शिक्षा में विज्ञान, गणित और साहित्य के बीच जो रेखाएं खिंची नजर आती हैं वो ठीक नहीं हैं।
- बिना दृष्टि के हम प्रकृति को ठीक ढंग से देख नहीं सकते, उसे महसूस नहीं कर सकते और फिर उसे अपने विषयों से जोड़ भी नहीं सकते
- प्रकृति को देखना विज्ञान का भी काम है और साहित्य का भी।
- साहित्य को कक्षा में रोचक ढंग से पढ़ाना एक महत्वपूर्ण पहलू है।
- जरूरी नहीं कि एक अच्छा साहित्यकार अच्छा साहित्य का अध्यापक भी हो।
- इसके लिए साहित्य के सिधान्त और शिक्षा के सिद्धान्त को साझा करके समझने की जरूरत है।
- स्मृति के उपकरणों के बारे में सोचना, उन्हें ठीक तरह से समझना भी जरूरी है।
- भाषा के माध्यम से हम मानसिक प्रक्रियाओं के मामले में विचार को सामने लेकर आते हैं।
- भाषा (लिखित) हमें अपने ही सोचे हुए को दोबारा पलटने और उसे परिमार्जित करने का अवसर देती है।
- मौखिक बातचीत में अपने ही कहे हुए या लिखे हुए के करीब आने की सुविधा नहीं होती।
- सचेत भाषिक व्यवहार अपनी मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में सचेत होता है।
- भाषा का काम सिर्फ वाक्य निर्माण या अर्थ निर्माण करना भर नहीं है एक वाक्य को कई तरह से लिखा या कहा जा सकता है और उसके कई अर्थ हो सकते हैं।
- भाषा के अध्यापक का काम छात्रों की वर्तनी की गलतियां सुधारने से काफी आगे का है।
- भाषा केवल वाक्यों का निर्माण नहीं करती वह वास्तविकता का निर्माण भी करती है, धारणाओं का निर्माण भी करती है।
- साहित्य को किस तरह हम देखें उसके किस तरह से अर्थ खोल सकें इसका दायित्व साहित्य के अध्यापक का है।
- साहित्य के अर्थ पढ़े जाने के देशकाल और पढने वाले की मनस्थिति व सामजिक परिवेश से भी जुड़ते हैं।
- भाषिक प्रयोगों के बारे में छात्रों को सजग करना साहित्य के शिक्षक का एक उद्देश्य है लेकिन सिर्फ इतना ही उद्देश्य नहीं है।
- साहित्य में जो रस है, आनन्द है, अनुभूति और है उस तक किस तरह छात्रों को पहुंचाया जा सके उनकी चेतना के स्तर को किस तरह समृद्ध किया जा सके यह भी सोचना होगा।
- भाषा को लेकर अतिरिक्त सजगता भी भाषा की राह में अवरोध बन सकती है।
- साहित्य का (कविता या कहानी या अन्य विधा भी) अच्छा पाठ भी जरूरी है।
- समय के साथ हमारे मुहावरे, रूपक भी बदलते ही हैं।

बाल साहित्य का यांत्रिक उपयोग ठीक नहीं

लंच के बाद की चर्चा बाल साहित्य पर केन्द्रित हुई। गुरुबचन सिंह जी ने अपनी बात की शुरुआत में ही कहा कि सारा द्वंद्व बड़ों और बच्चों के बीच का है। शिक्षा में बाल साहित्य पर कम ही बात होती है बल्कि बाल साहित्य को शिक्षण में अवरोध के तौर पर भी देखा जाता है। उन्होंने कहा भारत में सिर्फ 20 बरस ही हुए हैं कि शिक्षण में बाल साहित्य पर भी बात होते। यानि अभी यह चिन्तन यहां नया नया ही है। इस पर अभी और गंभीर चिन्तन होने की जरूरत है। उन्होंने अपने वक्तव्य में कुछ बातें कहीं जो इस प्रकार रहीं–

- किसी भी देश या समाज को समझने के लिए वहां के खिलौने और बाल साहित्य को देखा जाना चाहिए।
- बच्चों का एक बड़ा समूह वंचित समूह है।
- बहुत से बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने कभी पढ़ने–लिखने की सामग्री देखी ही नहीं।
- बड़ों में बच्चों को देखने, उन्हें समझने की दृष्टि का भी अभाव है।
- हमारे समाज में किताबों को खरीदने की संस्कृति नहीं है, आदत नहीं है।
- बाल साहित्य को लेकर समझ का अभाव है, उसके बर्ताव को लेकर समस्या है।
- जहां बाल साहित्य का प्रयोग हो रहा है, वहां यांत्रिक तरह से हो रहा है जिसके चलते बच्चे साहित्य का

आनंद नहीं ले पा रहे हैं। बाल साहित्य ऐसा हो कि वो बच्चों में तार्किकता पैदा करे।

- एनसीएफ बच्चों में जिस संवेदनात्मक और संज्ञानात्मक विकास की बात करता है वह बाल साहित्य से ही संभव है।
- भाषा की पढ़ाई के लिए सिर्फ पाठ्य पुस्तकों पर निर्भरता भी ठीक नहीं है।
- बच्चे के समग्र विकास के लिए पूरी तैयारी की जरूरत है। आज बच्चों में भावों की, संवेदनाओं की कमी है इस जरूरत को बाल साहित्य और भाषा शिक्षण पूरा कर सकता है।
- हर स्कूल में एक समृद्ध पुस्तकालय होना चाहिए। उस पुस्तकालय में ऐसा साहित्य हो जो बच्चों में सक्रियता, रचनात्मकता, उत्सुकता, रोमांच, कौतुहल, सौन्दर्यबोध, एक–दूसरे के प्रति सम्मान की भावना जगा सके।
- सहूलियत से पढ़ने के अवसर और दबाव में पढने के अवसर में अंतर है।
- बाल साहित्य की भाषा में सरलता, विविधता और अपनापन होना जरूरी है, वहां बेमतलब की आदर्शवादी अतिरंजनाएं न हों।

वैज्ञानिक नजरिया होना तो जरूरी है

चौथे दिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर शिक्षक साथी भूपेन सिंह ने बात रखी। उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ पढ़ने–लिखने की संस्कृति को जोड़ते हुए कहा कि आजकल ज्ञान विरोधी माहौल बनता दिखाई दे रहा है। गंभीर बातों को ज्ञान देने वाली बातों के रूप में देखा जाने लगता है। लेकिन हमको यह याद रखना है कि ज्ञान से इन्सान बड़ा है। भूपेन ने कहा कि इस तरह की संगोष्ठियां आशान्वित करती हैं। उन्होंने पढ़ने–लिखने की संस्कृति के बारे में बात करते हुए कहा कि पढ़ना–लिखना जरूरी तो है लेकिन यह भी जरूरी है कि समझा जाए कि क्या पढ़ना है? हमको यह समझना होगा कि समाज में सत्ताओं ने किस तरह काम किया है, ज्ञान को भी एक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। और इसके लिए धर्म का धर्म ग्रंथों का सहारा लिया गया. इसीलिए राजा, धर्म, पुजारियों के कहे को अंतिम सत्य माना जाता था। जिन रहस्यों को मानव समझ नहीं पाया उसे धर्म से, अलौकिकता से जोड़ दिया गया लेकिन आधुनिकता ने, नये विचारों ने इस मान्यता को चुनौती दी। उन्होंने कहा कि आधुनिकता ने व्यक्ति की आजादी को, बराबरी को महत्व दिया, भेदभाव को गलत बताया। चीजों को देखने, समझने और मानने के लिए वैज्ञानिक नजरिये के महत्व पर जोर दिया।

पढ़ना लिखना अगर आदत बन जाए– कुछ प्रस्ताव संकल्प

शिक्षक साथी महेश पुनेठा ने 'पढने लिखने की संस्कृति की ओर...' को अगले सत्र में विस्तार दिया. उन्होंने कहा–

- कोई भी काम जब निजी से सामूहिकता में बदलता है, तभी वो सफल होने की ओर अग्रसर होता है।
- हिंदी भाषी राज्यों में पढ़ने की संस्कृति ऐसी नहीं बनी कि पढ़ना हमारे जीवन का हिस्सा हो।
- अखबार के अलावा, पढ़ने की आदत हमारी जीवन शैली का हिस्सा हो ऐसा भी नहीं है।
- तो पढ़ने की यह संस्कृति, आदत किस तरह बने यह जानना महत्वपूर्ण है।
- पढ़ने को केवल किताब पढ़ने तक सीमित करके नहीं देखा जाना चाहिए, यात्राएं, प्रकृति से साक्षात्कार समाज को पढ़ना भी पढ़ने का ही हिस्सा है।
- फेसबुक, ब्लॉग, वेबसाईट, किनडल आदि से पढ़ने को भी पढ़ने में ही शामिल किया जा सकता है।
- अध्यापकों में पढ़ने की आदत का होना बहुत जरूरी है तभी वो पढ़ने का आनन्द ले सकेंगे और छात्रों को उस आनंद से जोड़ सकेंगे।
- शिक्षकों को स्कूल में समृद्ध पुस्तकालय की जरूरत को समझना होगा और दीवार पत्रिका के उपयोग को पुस्तकालय से जोड़ना होगा।
- बाल साहित्य केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए, ये बाल साहित्य केंद्र बच्चे ही चलायें।
- उत्तराखण्ड में 10 बाल साहित्य केंद्र ऐसे हैं जो बच्चे चला रहे हैं।
- साहित्यकारों और शिक्षकों को साहित्य का प्रचार–प्रसार करना होगा।
- लोगों में पुस्तक खरीदने की आदत डलवानी होगी।
- आसपास के बुक स्टोर्स को भी अच्छी किताबें शिक्षकों को सुझानी चाहिए।
- लोग पढ़ते कम हों ऐसा नहीं है, वो सार्थक कम पढ़ते हैं ऐसा जरूर है तो उनके पढ़ने की सामग्री को रिप्लेस करना यानि उन्हें बेहतर सामग्री पढ़ने की

ओर लाना होगा।

- पढ़ने–पढ़ाने के ज्यादा से ज्यादा अवसर जुटाने होंगे।
- छात्रों को ऐसे काम दिए जाने चाहिए जिसमें उन्हें किताबों की ओर, पुस्तकालय की ओर जाना पड़े।
- बाल–लेखन कार्यशालाएं आयोजित की जानी चाहिए।
- विद्यालय स्तर पर बाल पत्रिकाएं निकाली जा सकती हैं।
- हमारे स्कूल बच्चों को किताबों से दूर करने वाले तो नहीं बन रहे इसका ध्यान देने की जरूरत है।
- हमारे बुजुर्ग कहानी कहने में कुशल हैं हमें उनसे कहानी कहने के कौशल को सीखना होगा और बच्चों को कहानियों की दुनिया में लाना होगा।

यह सिलसिला टूटे नहीं

सत्र का समापन करते हुए अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के राज्य प्रमुख कैलाश चन्द्र काण्डपाल ने कहा कि 'पढ़ने–लिखने की संस्कृति को बढ़ाने के उद्देश्य से उत्तराखण्ड के दूर–दराज से इतने शिक्षक साथियों का मिलकर जमा होना बहुत महत्वपूर्ण बात है। उन्होंने संस्थान के उद्देश्यों को स्पष्टता देते हुए कहा कि 'हम फिलहाल शिक्षक शिक्षा, कक्षा–कक्ष में शिक्षकों के अपने अनुभवों के साथ सीखने, समझने का काम कर रहे हैं। हमारा मानना है कि सार्वजनिक शिक्षा को बेहतर बनाना ही कारगर उपाय है। शिक्षा और स्वास्थ्य इन दो क्षेत्रों की जिम्मेदारी तो राज्य की ही होनी चाहिए। हम यह समझते हैं कि हम सभी को मिलकर सविधान के मूल उद्देश्यों का अनुसरण करते हुए समाज में अपनी भूमिका सुनिश्चित करनी चाहिये।' उन्होंने कहा कि 'सार्वजनिक शिक्षा से जुड़े शिक्षकों में अपार संभावनाएं हैं, वे ऊर्जा से भरे हुए हैं और विषयों में विशेषज्ञता रखते हैं। बहुत सारे शिक्षक साथी एक साथ कई क्षेत्रों में दखल रखते हैं। यह समूह जो चार दिन की संगोष्ठी के लिए एकत्र हुआ है यह इस समूह की जिम्मेदारी है कि यह सिलसिला टूटने न पाए और और ऐसे बहुत सारे समूह बन सकें। इस समूह को मैं राज्य स्तरीय समूह मानता हूं जिसकी भूमिका अलग अलग जिलों में ऐसे बहुत सारे समूहों की स्थापना और ज्यादा से ज्यादा शिक्षक साथियों को इससे जोड़ने की देखता हूं. हमारे जिलों और ब्लॉक्स के साथी ऐसी किसी भी पहल पर आपके साथ हैं।'

जरूरी हैं ऐसे आयोजन– कुमायूं विश्विद्यालय के कुलपति प्रोफेसर डी के नौरियाल ने कहा कि 'यह एकदम अलग तरह का आयोजन है। हमें ऐसे आयोजनों से बहुत सीखने की जरूरत है और इन्हें लगातार होते रहना चाहिए.' उन्होंने कहा अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन और कुमायूं यूनिवर्सिटी का साथ अब यूं ही बना रहेगा। इस अवसर पर शिक्षक साथियों द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'शैक्षिक दखल' और अज़ीम प्रेमजी फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित 'उम्मीद जगाते शिक्षक' का लोकार्पण भी किया गया।

– प्रतिभा कटियार